P: ISSN NO.: 2321-290X RNI : UPBIL/2013/55327 VOL-5* ISSUE-2* October- 2017
E: ISSN NO.: 2349-980X **Shrinkhla Ek Shodhparak Vaicharik Patrika**

यम–संज्ञकायोगवाह–निरूपण और ज्ञ–वर्णोच्चारणगत–रहस्यानावरण

विक्रम जीत
व्याख्याता,
संस्कृत विभाग,
राजकीय डूँगर स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
बीकानेर, राजस्थान

सारांश

आजकल संस्कृत व तन्मूलक हिन्द्यादि के प्रयोक्ताओं के समक्ष वर्णोच्चारण का संकट सार्वत्रिक है। प्रकृत पत्र में एक वर्ण–विशेष 'ज्ञ' के उच्चारण से सम्बद्ध संक्षिप्त विमर्श प्रस्तुत है। वस्तुतः 'ज्ञ' कोई अपूर्व वर्ण न होकर एक संयुक्त वर्ण है, जिसकी निष्पत्ति ज्+ञ से होती है। लेखन–सौविध्य के प्रयोजन से लिपि में यह 'ज्ञ' के रूप में लिखा जाता है, वैसे ही जैसे क्+ष = 'क्ष' लिखा जाता है। अतः इसका 'ज्+ञ' उच्चारण शुद्धोच्चारण है; पर साथ ही 'ग्ञ' उच्चारण, जो दक्षिण में तथा उत्तर भारत के व्यापक क्षेत्र में भी (किंचित् विकार के साथ) प्रचलित है, वह भी अशुद्ध नहीं है।

परन्तु वर्तमान में इस 'ज्ञ' के अनेक विलक्षण उच्चारण स्थानभेद से प्रचलित हैं, जो सर्वथा अशुद्ध हैं; कोई शास्त्रीय आधार उनके पीछे नहीं है। 'ज्य', 'ग्न', 'ज्न' इत्यादि ऐसे ही उच्चारण हैं। उत्तर भारतीय 'ग्ञ' उच्चारण भी अब 'ग्यं' होता हुआ स्पष्टतः 'ग्य' हो गया है। यह सब नितान्त अशुद्ध, शास्त्रविरुद्ध और हास्यास्पद है। 'ज्ञ' का जकार–पूर्वक ञकार उच्चारण अथवा गकार–पूर्वक ञकार उच्चारण ही उचित है। इसी प्रकार 'विज्ञानम्' का उच्चारण 'वि ज् ञा न म्' = 'विग्ञानम्' तथा 'ज्ञानम्' का 'ज् ञा न म्' = 'ग्ञानम्' उच्चारण होता है। यह उच्चारण वेदसम्प्रदाय–सिद्ध है। यद्यपि कतिपय लोग इसका विरोध करते हुए कहते हैं कि ज्+ञ के संयोग से निर्मित 'ज्ञ' वर्ण का मात्र 'ज्–ञ' उच्चारण ही साधु है; अतः वे लोग तदनुसार ही उच्चारण करते देखे जाते हैं। किन्तु पं. मधुसूदन ओझा ने 'ग्ञ' उच्चारण को शुद्ध व साम्प्रदायिक माना है।

मुख्य शब्द : वर्णोच्चारण, यम, विच्छेद, विरति, यति, विराम, अवष्टम्भ, अर्द्धक, रोमश, ध्मात, सन्दष्ट, स्वरभक्ति, स्पर्शभक्ति, अयोगवाह, ज्ञ, ज्ञानम्, विज्ञानम्, संयोगपिण्ड, स्वामी दयानन्द, पं. मधुसूदन ओझा, पाणिनीय शिक्षा, शिक्षाप्रकाश, पथ्यास्वस्ति।

प्रस्तावना

यह तो सर्वविदित है कि 'ज्ञ' कोई अपूर्व वर्ण न होकर एक संयुक्त वर्ण है, जिसकी निष्पत्ति ज्+ञ से होती है। लेखन–सौविध्य के प्रयोजन से लिपि में यह 'ज्ञ' के रूप में लिखा जाता है, वैसे ही जैसे क्+ष = 'क्ष' लिखा जता है। अतः इसका 'ज्ञ' उच्चारण शुद्धोच्चारण है पर साथ ही 'ग्ञ' उच्चारण, जो दक्षिण में तथा उत्तर भारत के व्यापक क्षेत्र में भी (किंचित् विकार के साथ) प्रचलित है, वह भी अशुद्ध नहीं है।

परन्तु वर्तमान में इस 'ज्ञ' के अनेक विलक्षण उच्चारण स्थानभेद से प्रचलित हैं, जो सर्वथा अशुद्ध हैं; कोई शास्त्रीय आधार उनके पीछे नहीं है। 'ज्य', 'ग्न', 'ज्न' इत्यादि ऐसे ही उच्चारण हैं। उत्तरभारतीय 'ग्ञ' उच्चारण भी अब 'ग्यँ' होता हुआ स्पष्टतः 'ग्य' हो गया है। यह सब नितान्त अशुद्ध, शास्त्रविरुद्ध और हास्यास्पद है। 'ज्ञ' का जकार–पूर्वक ञकार उच्चारण अथवा गकार–पूर्वक ञकार उच्चारण ही उचित है।

अध्ययन का उद्देश्य

'ज्+ञ' (=ज्ञ) के 'ग्ञ' उच्चारण का रहस्य और उसकी ध्वनिवैज्ञानिक प्रक्रिया का समाधान मेरे प्रकृत शोध–पत्र का उद्दिष्ट है और यह समाधान यमोत्पत्ति में ढूँढा जा सकता है। अतः 'यम' के अर्थ व स्वरूप का स्पष्टीकरण करते हुए 'ज्ञ' के उच्चारण की विधि का प्रतिपादन करणीय है।

'ज्ञ' के 'ग्ञ' उच्चारण की गुत्थी को सुलझाने और 'ज्ञ' के उच्चारण की ध्वनिवैज्ञानिक विधि को समझने के लिए यमोत्पत्ति को समझना आवश्यक है। इसलिए, ज्ञ–विषयक चर्चा से पहले 'यम' के अर्थ व स्वरूप का सविस्तर निरूपण किया जा रहा है।

P: ISSN NO.: 2321-290X RNI : UPBIL/2013/55327 VOL-5* ISSUE-2* October- 2017
E: ISSN NO.: 2349-980X **Shrinkhla Ek Shodhparak Vaicharik Patrika**

यम–स्वरूप–विमर्श

अयोगवाहान्तर्गत 'यम' भी संयुक्त–वर्णों का उच्चारण–वैशिष्ट्य है। विच्छेद, विरति, यति, विराम, अवष्टम्भ इत्यादि 'यम' के पर्याय हैं। 'यम' का अर्थ 'जुड़वाँ' या 'युगल' (ट्विन) भी है। सभी प्रातिशाख्यों तथा अनेक शिक्षाओं में यम–निरूपण मिलता है। यद्यपि यम के स्वरूप के विषय में अनेक विप्रतिपत्तियाँ हैं, तथापि सब का मत है कि अनासिक्य (अननुनासिक) स्पर्श–वर्ण से परे नासिक्य (अनुनासिक) स्पर्श होने पर मध्य में 'यम' की उत्पत्ति हो जाती है, जैसा कि कात्यायन ने कहा है –

अन्तःपदेपञ्चमाः पञ्चमेषु विच्छेदम्।[१]

तात्पर्य यह है कि किसी पद में यदि किसी भी वर्ग के पञ्चम–भिन्न वर्ण से परे किसी भी वर्ग का पञ्चम–वर्ण आता है तो वहाँ प्रयत्न की स्वाभाविकता के कारण न चाहते हुए भी मध्य में विच्छेद (विराम) करके उच्चारण करना होता है; यथा 'अग–निः', 'स्वप–नः' इत्यादि। यद्यपि यहाँ विना विच्छेद के भी 'अग्निः' इत्यादि का उच्चारण सम्भव तो है, किन्तु वह दोषपूर्ण हो जाता है। क्योंकि पूर्ण–स्पर्श वाले गकार का मन्द–स्पर्श से उच्चारण करने पर ही विच्छेदाभाव सम्भव है, किन्तु उस उच्चारण में फिर अर्द्धक, रोमश आदि दोष कहे जाते हैं, अतः वह प्रतिषिद्ध है। और कहीं यदि पञ्चम वर्ण से पूर्व अर्द्ध–स्पृष्ट वर्ण हो और मध्य में विच्छेद के लिए उस अपूर्ण–स्पर्श का भी पूर्ण–स्पर्श के समान उच्चारण कर दिया जाए, तो वह भी ध्मात, सन्दष्ट आदि दोषों से दूषित होने के कारण निषिद्ध होता है, यथा – 'प्रश्नः'। यहाँ नकार से पूर्व ऊष्म शकार के पश्चात् विच्छेद करना भी दोषपूर्ण माना गया है, इसीलिए कात्यायन ने कहा कि ऊष्मों से परे पञ्चम वर्ण आने पर 'यम' नहीं होता – ''ऊष्मभ्यः पञ्चमेषु यमापत्तिर्दोषः''[२] यह उल्लेख्य है कि यहाँ 'ऊष्म' शब्द 'अन्तस्थ' का भी उपलक्षण है। इस प्रकार कुछ लोगों के मत में अपञ्चम तथा पञ्चम वर्ण का मध्यस्थ विच्छेद ही यम है, न कि कोई पृथक् वर्णविशेष। इसी दृष्टि से 'अमोघानन्दिनी शिक्षा' में 'यम' को 'अशरीर' कहा गया है –

जकारौ द्वौ मकारश्च रेफस्तदुपरि स्थितः।
अशरीरं यमं विद्यात् सम्मार्ज्मीति निदर्शनम्।।[३]

अन्य ध्वनिविदों के मत में 'अग्नि' इत्यादि के उच्चारण में गकार तथा नकारादि के अन्तराल में विच्छेद के कारण गकारसदृश होते हुए भी गकारभिन्न, नासिक्यता–युक्त, अस्फुट, सूक्ष्म ध्वनिविशेष की उत्पत्ति होती है; यह सशरीर अपूर्व वर्ण ही यम है, न कि विच्छेदमात्र यम है; यथा – 'अग्ँनिः'। जैसा कि 'नारदीय शिक्षा' का वचन है –

अनन्त्यश्च भवेत् पूर्वोऽन्त्यश्च परतो यदि।
तत्र मध्ये यमस्तिष्ठेत् सवर्णः पूर्ववर्णयोः।।[४]

'याज्ञवल्क्यशिक्षा'[५] आदि ने भी यही मत व्यक्त किया है। इस विषय में सब ध्वनिशास्त्री एकमत हैं कि नासिक्येतरस्पर्श के पश्चात् नासिक्यस्पर्श आने पर ही मध्य में 'यम' होता है। अतः ऊष्म–अन्तस्थादि वर्णों से परे नासिक्यस्पर्श आने पर 'प्रश्न' 'कश्मल' आदि पदों में यम का निषेध हो जाता है। 'याज्ञवल्क्यशिक्षा' में एक रोचक उपमा के द्वारा इस प्रकार के स्थलों में यमों का प्रतिषेध किया गया है –

पञ्चमाः शषसैर्युक्ताः अन्तस्थैर्वापि संयुताः।
यमास्तत्र निवर्तन्ते श्मशानादिव बान्धवाः।।[६]

'नारदीयशिक्षा'[७] 'वर्णरत्नप्रदीपिकाशिक्षा'[८] आदि के वचन भी इस ही तथ्य की पुष्टि करते हैं।

यमोत्पत्ति का ध्वनिवैज्ञानिक विश्लेषण संक्षेप में यह है कि 'अग्नि' आदि पदों में पूर्वस्वराङ्गभूत गकार के उच्चारण के लिए कण्ठस्थान में स्पर्शयुक्त करण कुछ रुककर उत्तरवर्ती नासिक्य (नकार) के उच्चारण के लिए प्रयत्नवान् होता हुआ पूर्वस्पृष्टस्थान के विच्छेद के कारण पहले गकार–सदृश किसी द्वितीय ध्वनि को उत्पन्न करता है। पं. मधुसूदन ओझा ने यमोत्पत्ति का दृष्टान्त देते हुए लिखा है कि 'जिस प्रकार आगे की ओर दूर तक उछलने की इच्छा से सिंह–व्याघ्रादि जन्तु क्षणभर के लिए पीछे सरककर बलग्रहण करते हैं, उसी प्रकार यहाँ नासिकारूप दूरस्थ स्थानान्तर पर पहुँचने का इच्छुक करण पुनरपि पूर्वस्पृष्टस्थान पर जाकर पूर्ववर्ण के अनुरूप ध्वनि को उत्पन्न करता है, वही पूर्वसदृशध्वनि यम है।'[९]

यहाँ एक समस्या उठती है कि ''अयोगवाहाः विज्ञेया आश्रयस्थानभागिनः''[१०] के अनुसार यम को पूर्व–सदृश होना चाहिए और ''सवर्णः पूर्ववर्णयोः''[११] 'सोङ्गं पूर्वाक्षरस्य हि'[१२] ''यमः प्रकृत्यैव सदृक्''[१३] ''संयोगादिः पूर्वस्य, यमश्च क्रमजं च''१४ इत्यादि वचनों से सर्वत्र उसे पूर्वाङ्ग या पूर्व–सदृश माना भी गया है किन्तु इसके विपरीत ''अनुस्वार–यमानाञ्च नासिकास्थानमुच्यते''[१५] 'यमानुस्वारनासिक्यानां नासिकास्थानमुच्यते'[१६] इत्यादि वचनों से यम का स्थान नासिका भी माना गया है। इस प्रकार विरोध की प्रतीति होती है। परन्तु वस्तुतः यहाँ कुछ भी विरोध नहीं है। 'अग्ँनि' आदि में स्थित यम (द्वितीय गँकार) को सादृश्य के अनुरोध से पूर्वाङ्ग कहा गया है। वह (यम) पूर्वाङ्ग है तभी तो कोत्तर यम क–सदृश, खोत्तर ख–सदृश, गोत्तर ग–सदृश होता है। यम यदि पूर्व–सदृश नहीं हो तब तो उसे सर्वत्र एकरूप ही होना चाहिए। अतः यम पूर्व–सदृश होता है इसमें कोई संशीति नहीं। परन्तु पूर्वाङ्ग होते हुए भी परवर्ती नासिक्यवर्ण से अनुरक्त होने के कारण वह नासिक्यत्व से भी युक्त है। यदि यम नासिक्यता से युक्त नहीं हो तब तो सामान्य द्वित्व से उत्पन्न वर्ण में तथा यम में क्या भेद रह जाएगा?

यमों की संख्या को लेकर भी कई विप्रतिपत्तियाँ हैं :

1. 'प्रथम मत यह है कि पञ्चमातिरिक्त जो २० स्पर्शवर्ण हैं, तत्सदृशध्वनियों को ही पञ्चमवर्ण परे रहते यम कहा जाता है, अतः यम २० हैं। उन २० यमों की ही 'कुं खुं गुं घुं' ये चार संज्ञाएँ हैं। अथवा ये चार यमजातियाँ हैं, जिनमें २० यमों का अन्तर्भाव हो जाता है। वर्गों के प्रथमवर्णस्वरूप यमों का 'कुं' नाम से व्यवहार होता है, अर्थात् 'कं चं टं तं पं' की कुं संज्ञा है। इसी प्रकार वर्गों के द्वितीय का 'खुं' नाम से, तृतीय का 'गुं' नाम से तथा चतुर्थ का 'घुं' शब्द से व्यवहार होता है। इस प्रकार २० यम होते हुए भी

औपचारिक रूप से इन्हें ४ ही माना जाता है, जैसा कि 'याज्ञवल्क्यशिक्षा' में सोदाहरण बताया गया है –

रुक्–क्ँमेति प्रथमो ज्ञेयः सक्थ्–थ्ँना इत्यपरो भवेत्।
विद्–द्ँमाते तु तृतीयश्च जम्भे दध्–ध्ँमश्चतुर्थकः।।[२७]

इन्हीं चार की अन्यत्र शुद्धजित्, सोष्मजित्, शुद्धधि, सोष्मधि – ये चार संज्ञाएँ की गयीं हैं। भाष्यकार उवट ने इसी बात को स्पष्ट रूप से लिखा है –

''एवं विंशतिर्यमाः बह्वृचानां भवन्ति।
स्वरूपैश्चत्वार एव''।[२८]

2. 'द्वितीय मत के रूप में 'वैदिकाभरण' की चर्चा की जा सकती है जिसके अनुसार यम चार नहीं, प्रत्युत पाँच हैं। वहाँ सम्भवतः 'क् च् ट् त् प्' के यमों के लिए एक 'कुं' नाम न देकर 'क् ख् ग् घ्' के यमों के लिए 'कुं' नाम दिया गया है। इस दृष्टि से 'कुं चुं टुं तुं पुं' ये पाँच यम सिद्ध होते हैं। इस प्रकार इस मत में प्रत्येक वर्ग के लिए एक अन्तस्थ व एक ऊष्म की भाँति[१६] एक यम भी हो जाएग, अतः यह दृष्टिकोण अधिक संगत लगता है।
3. 'तृतीय मत का प्रतिनिधित्व स्वामी दयानन्द सरस्वती करते हैं, जो किसी यम की सत्ता को स्वीकार ही नही करते और 'यम' को वर्णविशेष मानने वालों की खिल्ली उड़ाते हैं।[२०] यद्यपि वे स्वयं 'ळ', अनुनासिकादि चार अयोगवाहों को 'यम' नाम देते हुए ही त्रिषष्टि वर्णों की गणना पूरी करते हैं; यह आश्चर्यजनक है!
4. 'इस सम्बन्ध में उक्त प्रतिपत्तियों से पूर्णतः भिन्न चतुर्थ मत है कि यम २० नहीं हैं, अपितु 'क् ख् ग् घ्' सदृश ध्वनियों वाले नासिक्य ४ ही यम हैं, जिनकी 'कुं खुं गुं घुं' संज्ञाएँ हैं। अतः 'संमार्ज्मी' का 'संमार्ज्–ंग्मी', 'रत्नम्' का 'रत्–क्ंनम्', 'सक्थ्ना' का सक्थ्–ंख्ना', 'विद्म' का विद्–ंग्म, 'दध्म' का 'दध्–ंघ्म, इत्यादि प्रकारेण उच्चारण होता है। यह मत पं. मधुसूदन ओझा की 'पथ्यास्वस्ति'[२१] में स्पष्टतः उपलब्ध होता है, जहाँ उन्होंने सन्दर्भ के रूप में 'पाणिनीय शिक्षा' के भाष्य 'शिक्षाप्रकाश' को उद्धृत किया है जिसमें 'अन्तर्वत्नि' तथा 'यज्ञ' का वर्ण–विश्लेषण करते हुए लिखा गया है – ''अंतर्वत्क्नीति तकार–यम ककार–नकारेकारा इति. यज्ज्ञ इत्यत्र जकार–पूर्ववर्णवर्गसंख्यसवर्णयमगकार–ञकारा इति।''[२२] अर्थात् वहाँ उक्त उदाहरणों में तकार व जकार के साथ भी क्रमशः ककार व गकार सदृश यम माना है, न कि तकार तथा जकार–सदृश। 'यमाश्च नासिक्यजिह्वामूलीयाः' इस आपिशलशिक्षागत सूत्र में किसी के मतानुसार यमों को जिह्वामूलीय माने जाने से भी उपर्युक्त ४ ही यम सिद्ध होते हैं।

ज्ञ–वर्णोच्चारण–विमर्श

उपर्युक्त यम–सम्बन्धी उच्चारण–विधि के विश्लेषण के साथ ही अब यहाँ विभिन्न वैदिक शब्दों में (व लोक में भी) प्रयुक्त 'ज्ञ' वर्ण के उच्चारण–वैशिष्ट्य का विमर्श अत्यन्त प्रासंगिक है। 'य–ज–ञ' शब्द को ही लें। यहाँ स्पर्श जकार व नासिक्य ञकार के मध्य पूर्व–सदृश यथासंख्य यम गकार करने पर – 'य ज् ग् ञ' हुआ। झल् गकार परे रहते 'चोः कुः' सूत्र से जकार को भी गकार कर देने पर – य ग् ग् ञ = 'यग्ञ' उच्चारण होता है। इसी प्रकार 'वि ज् ञा न म्' का उच्चारण 'विग्ञानम्' तथा 'ज् ञा न म्' का 'ग्ञानम्' उच्चारण होता है। यह उच्चारण वेदसम्प्रदायसिद्ध है। यद्यपि कतिपय लोग, विशेषतः महर्षि दयानन्द प्रभृति आर्यसमाजी इसका विरोध करते हुए कहते हैं कि ज्+ञ के संयोग से निर्मित 'ज्ञ' वर्ण का मात्र 'ज्–ञ' उच्चारण ही साधु है; अतः वे लोग तदनुसार ही उच्चारण करते देखे जाते हैं। किन्तु पं. मधुसूदन ओझा ने 'ग्ञ' उच्चारण को शुद्ध व साम्प्रदायिक माना है। लोक में भी यह उच्चारण होता है। वस्तुतः वैदिक उच्चारण का अधिक प्रचार होने के कारण लोक में प्रयुक्त उन वैदिक शब्दों में भी यमसहित उच्चारण की परम्परा चल पड़ी, ऐसा ओझा जी का तर्क है.[२३] यह उचित भी लगता है, क्योंकि कितने ही वैदिक शब्दों व वैदिक उच्चारणों का लोक में भी प्रचलन देखा जाता है। स्वामी दयानन्द के संस्कृत–वर्णोच्चारण–विषयक मौलिक विचारों से मैं प्रभावित रहा हूँ, किन्तु यहाँ मुझे लगता है कि 'पृथवी', 'पृथिवी' इत्यादि अनेक स्वरभक्ति सहित वैदिक उच्चारण जब लौकिक संस्कृत में प्रचलित व स्वीकृत हो सकते हैं, तो फिर 'यग्ञ' आदि यमसहित उच्चारणों पर आपत्ति क्यों होनी चाहिए? शायद कभी किसी दयानन्दानुयायी से इसका सन्तोषजनक समाधान मिले! हाँ, जो शब्द केवल लोक में प्रयुक्त हैं, उनका यमसहित उच्चारण नहीं होना चाहिए, होता भी नहीं है। 'याच्ञा'[२४] को यमरहित ही पढ़ा जाता है; कोई भी यमसहित 'याक्ञा' (याक्ञ्ञा) नहीं पढता। वैसे स्वामी दयानन्द की उपर्युक्त आपत्ति उनके लिए स्वाभाविक है, क्योंकि वे तो 'कुं खुं गुं घुं' जैसे किसी यम की सत्ता ही नहीं मानते।

यहाँ एक शंका हो सकती है कि 'ज्ञानम्', 'विज्ञानम्' इत्यादि में तो एक ही गकार की प्रतीति होती है। तब फिर अप्रतीयमान द्वितीय 'गुं' नामक यम की सत्ता कैसे मानी जा सकती है? इसका समाधान यह है कि यहाँ पूर्व स्पर्श 'गकार' और यम 'गुं' का जो संयोग है, वह अयस्पिण्ड (लौहपिण्ड) के समान घन है; अतः यम की पृथक् प्रतीति न होने पर भी उसकी सत्ता का अपलाप नहीं किया जा सकता। 'गौतमीशिक्षा' (सामवेदीया) में व्यञ्जन–संयोग की चर्चा के प्रसंग में तीन प्रकार के संयोगपिण्ड गिनाए गए हैं – अयस्पिण्ड, दारुपिण्ड व ऊर्णापिण्ड.[२५] यमों के साथ वर्णों के संयोग को अयस्पिण्ड माना गया है, अर्थात् यह संयोग अत्यन्त घन बन्ध वाला होता है। इसीलिये गौतम ने भी यम को 'अशरीर' माना है।[२६] 'अशरीर' का तात्पर्य यही है कि 'यम' पूर्ववर्ती स्पर्शवर्ण के शरीर में अन्तःप्रविष्ट सा हो जाता है। इसीलिये पूर्ववर्ती स्पर्श व यम के मध्य कोई विच्छेद नहीं होता और 'ज्ञानम', 'विज्ञानम' आदि उदाहरणों में पूर्वस्पर्श से भिन्न यम की प्रतीति नहीं होती।

निष्कर्ष

निर्गलितार्थ यह हैं कि 'ज्ञ' का ज्ञ् (जकार–पूर्वक ञकार) उच्चारण अथवा ग्ञ् (गकार–पूर्वक ञकार) उच्चारण ही विधिसम्मत है।

सन्दर्भ–सूची

1. *'न संयोगं स्वर्भक्तिर्विहन्ति'। – ऋक्प्रातिशाख्य ६/३५*
2. *वाजसनेयिप्रातिशाख्य ४/१६३*
3. *शिक्षासंग्रह (आ. रामप्रसाद त्रिपाठी) पृ. ७८। याज्ञवल्क्यशिक्षा में भी यही कहा है – 'अशरीरं यमं विद्यात्'।*
   – शिक्षासंग्रह, पृ. २६
4. *शिक्षासंग्रह, पृ. ३५५*
5. *अपञ्चमैश्चैकपदे संयुक्तं पञ्चमाक्षरम्*
6. *उत्पद्यते यमस्तत्र सोऽङ्गं पूर्वाक्षरस्य हि। – शिक्षासंग्रह, पृ. २६*
   शिक्षासंग्रह, पृ. २६
7. *वर्गान्त्यान् शषसैः सार्धमन्तस्थैर्वापि संयुतान्।*
   दृष्ट्वा यमा निवर्तन्ते आदेशिकमिवाध्वगाः।।
   – शिक्षासंग्रह, पृ. ३५५
8. *शिक्षासंग्रह, पृ. १११*
9. *वर्णसमीक्षा, पृ. ३६*
10. *पाणिनीय शिक्षा, २२*
11. *नारदीय शिक्षा, शिक्षासंग्रह, पृ. ३५५*
12. *याज्ञवल्क्य शिक्षा, शिक्षासंग्रह, पृ. २६*
13. *ऋक्प्रातिशाख्य ६/३२*
14. *वाजसनेयि प्रातिशाख्य १/१०२–१०४*
15. *पाणिनीय शिक्षा, २२*
16. *वाजसनेयि प्रातिशाख्य १/७४*
17. *शिक्षासंग्रह, पृ. २६*
18. *ऋक्प्रातिशाख्य १/५० पर*
19. *चवर्ग का अन्तस्थ य्, टवर्ग का र्, तवर्ग का ल् तथा पवर्ग का व् है। इसी प्रकार कवर्ग का ऊष्म ह्, चवर्ग का श्, टवर्ग का ष् तथा तवर्ग का स् है। ऊष्म हकार के समान ही कवर्ग का अन्तस्थ भी (हकार) था जो आज लुप्त है और पवर्ग का ऊष्मवर्ण भी (छव् सदृश) था जो अब लुप्त हो चुका है। इस सम्बन्ध में 'भाषाविज्ञान की भारतीय परम्परा और पाणिनि' पृ. २७६–२७७ द्र. है !*
20. *द्र. 'वर्णोच्चारणशिक्षा' की भूमिका पृ. २५–२६*
21. *अलबत्ता, मैंने (शिक्षासंग्रह के पृ. ३२६ पर प्रकाशित) 'शिक्षा प्रकाश' के जिस पाठ का अनुशीलन किया है, उससे उपर्युक्त तथ्य की पूर्णतः पुष्टि नहीं होती है; परन्तु मुझे लगता है कि वहाँ प्रकाशित पाठ ही भ्रष्ट है।*
22. *'आर्षोच्चारणप्रचारभूयस्त्वादिह*
    यमसहितोच्चारणसम्प्रदायप्रवृत्तिः'। – पथ्यास्वस्ति, पृ. ८
23. *याच्ञा मोघा वरमधिगुणे नाधमे लब्धकामा'। – मेघदूत (पूर्वमेघ)*
24. *'अनेकं व्यञ्जनं यत्रोपर्युपरि संयुक्तं तत्संयोगसंज्ञं भवति। ... अथ त्रिविधः संयोगपिण्डो भवति – अयस्पिण्डो*
    दारुपिण्डस्तथोर्णापिण्डश्चेति। यमसहितमयस्पिण्डम्, दारुपिण्डमन्तस्थैर्युक्तम्, यमान्तस्थवर्जन्तूर्णापिण्डम्'।
    – शिक्षासंग्रह, पृ. ३७२
25. *'अशरीरं यमं विद्यात्'। – शिक्षासंग्रह, पृ. ३७२*